



ISSN: 3049-2017

IJMH 2026; 3(1): 07-10

© 2026 IJMH

www.themultijournal.com

Received: 15-12-2025

Accepted: 05-01-2026

Publish : 06-01-2026

गुंजन जैन

पीएच.डी. शोधार्थी,

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृत-

विश्वविद्यालयः, नई दिल्ली

जैन दर्शन में अहिंसा और उसकी उपयोगिता**गुंजन जैन****“अहिंसा प्रथमो धर्मः सर्वेषामिति सन्मतिः।****ऋषिभिर्बहुधा गीतं सूनृतं तदनन्तरम् ॥¹”**

जैन साहित्य भारतीय बौद्धिक परम्परा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं समृद्ध अंग है, जिसने सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, नैतिक, वैचारिक तथा ज्ञान-वैज्ञानिक क्षेत्रों में गहन एवं स्थायी प्रभाव छोड़ा है। इसकी विषयवस्तु न केवल धार्मिक आस्थाओं तक सीमित है, अपितु मानव जीवन के समग्र विकास और सामाजिक व्यवस्था के नैतिक अनुशासन को भी सुव्यवस्थित रूप प्रदान करती है।

“अहिंसयैव जगन्माताऽहिंसेवानन्दपद्धतिः।²”

इसी व्यापक दृष्टि के कारण जैन साहित्य का स्थान भारतीय दर्शन परम्परा में विशिष्ट एवं मौलिक माना जाता है।

जैन दर्शन की मूल आत्मा अहिंसा में निहित है। वस्तुतः अहिंसा जैन दर्शन का केन्द्रीय, आधारभूत एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसके अभाव में इसकी दार्शनिक संरचना को समझना सम्भव नहीं है। जैन दर्शन और अहिंसा का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ एवं अविच्छिन्न है कि जैन दर्शन को प्रायः ‘अहिंसा-दर्शन’ की संज्ञा दी जाती है। जैन आगमिक एवं दार्शनिक ग्रन्थों में अहिंसा को केवल नैतिक उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि, कर्मसंवर एवं मोक्ष-साधना की अनिवार्य प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

यद्यपि भारतीय दार्शनिक परम्परा के विभिन्न धर्मों एवं दर्शनों में अहिंसा का उल्लेख एवं महत्व स्वीकार किया गया है, तथापि जैन दर्शन में इसकी व्याख्या अत्यन्त सूक्ष्म, गहन एवं सर्वांगीण रूप में प्राप्त होती है। जैन अहिंसा केवल स्थूल हिंसा के निषेध तक सीमित नहीं है, अपितु मन, वचन और काय—तीनों स्तरों पर उत्पन्न होने वाली हिंसक प्रवृत्तियों, भावों एवं कषायों के पूर्ण परित्याग की अपेक्षा करती है। इस प्रकार अहिंसा जैन दर्शन में नैतिक मूल्य मात्र न होकर आत्मिक साधना एवं दार्शनिक अनुशीलन का केन्द्रबिन्दु बन जाती है।

• अहिंसा की व्युत्पत्ति एवं अर्थ

‘अहिंसा’ शब्द की व्युत्पत्ति ‘हिंसा’ शब्द से मानी जाती है। ‘हिंसा’ शब्द ‘हिंस्’ धातु (हिंस—हिंसायाम्) से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है—प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना अथवा उनके प्राणों का विनाश करना। इस शब्द के पूर्व ‘अ’ उपसर्ग के योग से ‘अहिंसा’ शब्द बनता है, जिसका सामान्य अर्थ हिंसा का अभाव माना जाता है। किंतु दार्शनिक दृष्टि से अहिंसा केवल निषेधात्मक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक सकारात्मक, व्यापक और गहन नैतिक-आध्यात्मिक सिद्धान्त है।

जैन आगमिक परम्परा में हिंसा का मूल कारण प्रमाद को माना गया है। आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है-

Correspondence:**गुंजन जैन**

पीएच.डी. शोधार्थी,

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृत-

विश्वविद्यालयः, नई दिल्ली

“प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा³”

अर्थात् प्रमादपूर्वक प्राणों का विनाश करना हिंसा है। इस सूत्र से स्पष्ट होता है कि हिंसा का स्रोत बाह्य क्रिया नहीं, बल्कि आन्तरिक प्रमाद और असंयम है। अतः अहिंसा का वास्तविक स्वरूप भी संयम, सावधानी और आत्मजागरूकता पर आधारित है।

• अहिंसा की परिभाषा

अहिंसा आत्मसंयम, करुणा और विवेक पर आधारित वह नैतिक-आध्यात्मिक सिद्धान्त है, जो आत्मा को कर्म-बन्धन से मुक्त कर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर करता है।

आचार्य अमृतचन्द्र ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में अहिंसा का भावात्मक स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है -

“अप्रदुर्भावः खलु रागादिनां भवत्यहिंसेति।

तेषामेवोत्पत्तिः हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।⁴”

अर्थात् राग-द्वेष आदि भावों का अभाव ही अहिंसा है और उनका उत्पन्न होना ही हिंसा—यही जिनागम का सार है।

इसी प्रकार रत्नकरण्डश्रावकाचार में अहिंसाणुव्रत का लक्षण इस प्रकार बताया गया है-

“संकल्पात् कृतकारितमननद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।

न हिनस्ति यत्तवाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः।⁵”

अर्थात् जो व्यक्ति मन, वचन और काय से न तो स्वयं हिंसा करता है, न करवाता है और न उसका अनुमोदन करता है, वही अहिंसा-णुव्रती कहलाता है।

वसुनन्दीश्रावकाचार में अहिंसाव्रत का निर्देश करते हुए कहा गया है—

“जे तसकाया जीवा पुव्वुद्धिद्वान् हिंसियंवा ते।

एइं दिया विणिक्कारणेण पठम वयं भूलं।⁶”

अर्थात् त्रस जीवों की हिंसा नहीं करनी चाहिए तथा निष्प्रयोजन एकेन्द्रिय जीवों का वध भी वर्जित है—यही प्रथम स्थूल अहिंसाव्रत है।

भगवती आराधना में अहिंसा का भावात्मक स्वरूप इस प्रकार कहा गया है

“अत्ता चेव अहिंसा, अत्ता हिंसति णिच्छओ समए।

जो होदि अप्पमत्तो, अहिंसगो हिंसगो इदरो।⁷”

भगवती आराधना प्रकाशक चौक विद्या संस्थान अर्थात् प्रमादरहित आत्मा अहिंसक है और प्रमादयुक्त आत्मा हिंसक।

द्वितीय शताब्दी के आचार्य श्री समन्तभद्राचार्य स्वयंभूस्तोत्र में अहिंसा का परम तात्त्विक स्वरूप इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं

“अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं।

न सातत्यारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ॥⁸”

इस श्लोक के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि समस्त प्राणियों के प्रति अहिंसा ही परम ब्रह्म है। जहाँ पूर्ण अहिंसा विद्यमान होती है, वहीं राग-द्वेष से रहित वीतराग परमात्म-स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है। जिस आश्रम-विधि में सूक्ष्म से सूक्ष्म हिंसा का भी आरम्भ नहीं होता, वही अहिंसा का वास्तविक स्वरूप है।

• अहिंसा हिंसा के भेद और प्रकार

1. प्रथम दृष्टि

आन्तरिक एवं बाह्य हिंसा

1. निश्चयहिंसा (आन्तरिक अहिंसा) - यह आचार्य के अनुसार मन, वचन और काय में उत्पन्न हिंसक भावों का त्याग है। इसे आन्तरिक अहिंसा कहा जाता है।

2. व्यावहारिक हिंसा - यह बाहरी क्रियाओं में होने वाली हिंसा है, जैसे किसी जीव का वध या हानि।

2. द्वितीय दृष्टि

1. भावहिंसा (भावात्मक हिंसा) - केवल कषाय-भावों (क्रोध, राग, द्वेष) से उत्पन्न होती है। यदि कषाय हैं, परंतु किसी जीव को हानि नहीं होती, तब भी पाप कर्म उत्पन्न होता है। अतः भावहिंसा भी हिंसा के अंतर्गत आती है।

2. द्रव्यहिंसा (भौतिक/स्थूल हिंसा) - जीवों के प्राणों को हानि पहुँचाने से होती है।

संदर्भ श्लोकः

“युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेषमन्तरेणापि।

न हि भवति जातु हिंसा प्राणव्यपरोपणादेव॥⁹”

अर्थ: यदि कोई सज्जन पुरुष या मुनि सावधानीपूर्वक मार्ग चलकर भी किसी जीव की मृत्यु का कारण बनता है, तब उसे हिंसा का दोष नहीं लगता, क्योंकि उसके मन में रागादि कषाय नहीं थे।

3. तृतीय दृष्टि

हिंसा के चार भेद शास्त्रों में किए गए हैं।

1. संकल्पी हिंसा - संकल्पपूर्वक, जानबूझकर किसी जीव को कष्ट पहुँचाना या मारना संकल्पी हिंसा कहलाती है। इसमें पूर्व निश्चय (संकल्प) होता है, यह सबसे गंभीर हिंसा मानी गई है।

2. आरंभी हिंसा - जीवन-निर्वाह या गृहस्थ जीवन के आरम्भिक कार्यों में अनजाने में होने वाली हिंसा आरंभी हिंसा कहलाती है।

3. उद्योगी हिंसा-व्यवसाय, कृषि, व्यापार या उद्योग के कारण होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा कहलाती है।

4. विरोधी हिंसा-आत्मरक्षा, धर्मरक्षा या समाजरक्षा के लिए की गई हिंसा विरोधी हिंसा कहलाती है।

4. चतुर्थ दृष्टि

1. कायिक अहिंसा (शारीरिक अहिंसा) - कायिक अहिंसा का अर्थ है—शरीर से किसी भी जीव को कष्ट न देना। किसी प्राणी को मारना, चोट पहुँचाना, बाँधना, सताना या उसके जीवन के साधनों को नष्ट करना कायिक हिंसा है; और इन सबका त्याग करना कायिक अहिंसा कहलाता है। जैन दर्शन में इसे अहिंसा का स्थूल और प्रत्यक्ष रूप माना गया है।
2. वाचिक अहिंसा (वाणी की अहिंसा) - वाचिक अहिंसा का तात्पर्य है—कटु, असत्य, अपमानजनक और द्वेषपूर्ण वाणी का त्याग। कठोर शब्दों से भी मनुष्य और अन्य प्राणियों को मानसिक पीड़ा होती है। इसलिए सत्य, मधुर, हितकारी और संयमित वाणी का प्रयोग करना वाचिक अहिंसा कहलाता है।
3. मानसिक (आदर्श/भाव) अहिंसा - मानसिक अहिंसा का अर्थ है—मन में किसी के प्रति क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या या हिंसा का भाव न रखना। जैन दर्शन के अनुसार हिंसा का मूल मन में उत्पन्न होने वाले कषाय हैं। जब मन शुद्ध, करुणामय और समभावयुक्त होता है, तभी वास्तविक अहिंसा संभव होती है। यही अहिंसा का सबसे सूक्ष्म और श्रेष्ठ रूप है।

इन सभी के अतिरिक्त हिंसा के नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव की अपेक्षा से भी भेद किए जा सकते हैं। हिंसा शब्द के द्वारा संख्यात, हिंसा अर्थ से असंख्यात और भाव की अपेक्षा से अनंत प्रकार की हिंसा होती है।

• वर्तमान युग में उपयोगिता

“सर्वे जीवादि इच्छन्ति, जीवाउं न मरिज्जुं।

तम्हा पाणिहं घोरं, निगन्धा वज्जयतिण॥¹⁰”

सभी प्राणी अपने जीवन को प्रिय मानते हैं और मृत्यु से भयभीत रहते हैं। अतः जो अपने जीवन को प्रिय मानता है, उसे दूसरों के जीवन के प्रति भी वही दृष्टि रखनी चाहिए। इसी कारण जैन दर्शन में समस्त प्रकार की हिंसा त्याज्य मानी गई है।

• व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का महत्त्व

“अत्ता चेव अहिंसा अत्ता हिंसति णिच्छओ समये।

जो होदि अप्पमत्तो अहिंसगो हिंसगो इदरो॥¹¹”

भावार्थ निश्चय नय से आत्मा ही अहिंसा है और आत्मा ही हिंसा है। जो व्यक्ति अप्पमत्त (सचेत, सावधान) रहता है, वह अहिंसक होता है और जो प्रमादयुक्त होता है, वही हिंसक कहलाता है।

व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा का पालन मनुष्य के जीवन को पवित्र, संतुलित और स्वस्थ बनाता है। अहिंसा केवल किसी को न मारने तक सीमित नहीं है, बल्कि विचार, वाणी और व्यवहार—तीनों स्तरों पर किसी भी प्रकार की हिंसा से बचने की जीवन-पद्धति है। अहिंसक

व्यक्ति सामान्यतः मांस, मदिरा और अन्य नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करता, जिससे उसका शरीर स्वस्थ रहता है। इसके अतिरिक्त गंदा पानी पीने और रात्रि-भोजन से बचना भी अहिंसा का ही अंग माना गया है, क्योंकि इससे सूक्ष्म जीवों की हिंसा होती है और पेट से संबंधित अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

अहिंसा का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष क्रोध का त्याग है। क्रोध से मानसिक शांति नष्ट होती है, रक्तचाप बढ़ता है और तनाव व मस्तिष्क संबंधी विकार उत्पन्न होते हैं। क्रोध के कारण ही मनुष्य आपसी झगड़ों, शत्रुता और कोर्ट-कचहरी तक पहुँच जाता है। जो व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है, वह संयमी, सहनशील और शांत रहता है, जिससे उसके पारिवारिक और सामाजिक संबंध मधुर बने रहते हैं। इस प्रकार अहिंसा व्यक्तिगत जीवन में स्वास्थ्य, शांति और आत्मिक विकास की आधारशिला सिद्ध होती

• सामाजिक स्तर पर अहिंसा का महत्त्व-

“न तेन अरियो होंति येन पाणाणि हिंसति।

अहिंसा सब्बपाणाणं अरियो ति पवुच्चति॥¹²”

जो व्यक्ति प्राणियों की हिंसा करता है, वह किसी भी प्रकार से आर्य या श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा की भावना रखने वाला व्यक्ति ही वास्तव में आर्य और श्रेष्ठ कहलाता है। अहिंसा से जीवन में सद्भाव, सहिष्णुता और दयालुता का विकास होता है, जिससे परिवार, समाज, संगठन और राष्ट्र में व्याप्त कटुता और संघर्ष समाप्त हो सकते हैं। सामान्यतः देखा जाता है कि जब एक व्यक्ति क्रोधित होता है तो दूसरा भी क्रोधित हो जाता है और विवाद बढ़ता जाता है; किन्तु यदि एक क्रोधित हो और दूसरा शांत रहे, तो शत्रुता आगे नहीं बढ़ती और क्रोध स्वतः शांत हो जाता है। इसी प्रकार समाज और राष्ट्र के विवाद भी अहिंसा, संवाद और मित्रता से सरलता से सुलझाए जा सकते हैं। जिस समाज या देश में अहिंसा का मूल्य नहीं होता, वहाँ मानवीय मूल्यों का हास हो जाता है। अहिंसा ही मानवता का आधार, शरण और प्रतिष्ठा है। अहिंसक मनुष्य जागरूक होता है, शत्रुता से दूर रहता है और जीवन के सच्चे आनंद को प्राप्त करता है। इसलिए अहिंसा के स्वरूप को समझना और उसे अपनाकर ही जीवन की वास्तविक सार्थकता है।

• पर्यावरण क्षेत्र में अहिंसा का महत्त्व

जैन धर्म के अनुसार अहिंसा केवल प्राणियों तक सीमित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति से जुड़ी हुई है। पेड़-पौधों की अनावश्यक कटाई और मांसाहार से प्रकृति का संतुलन बिगड़ता है, जिससे वनों का नाश और अनेक जीव-प्रजातियों का लोप होता है।

अंधाधुंध औद्योगिकीकरण से नदियों में विषैला जल और वायु में प्रदूषण फैलता है, जिससे जलीय एवं स्थलीय जीवों का जीवन संकट में पड़ जाता है। इसलिए पर्यावरण संरक्षण के लिए अहिंसा को अपनाया आवश्यक है, क्योंकि अहिंसा ही प्रकृति और मानव के सहअस्तित्व का आधार है।

• विज्ञान के क्षेत्र में अहिंसा का महत्त्व

जैन आचार्यों ने जल के विवेकपूर्ण उपयोग पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार पानी का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार, संयमपूर्वक और छानकर करना चाहिए। यह अहिंसा का पालन भी है और जल-संरक्षण का उपाय भी। आज विज्ञान भी यह मानता है कि दूषित जल अनेक रोगों का कारण है और जल का अपव्यय भविष्य में गंभीर संकट उत्पन्न कर सकता है।

इसी प्रकार जैन धर्म में रात्रि-भोजन का निषेध किया गया है। आधुनिक विज्ञान ने भी सिद्ध किया है कि रात में भोजन करना पाचन-तंत्र के लिए हानिकारक होता है और अनेक रोगों को जन्म देता है। वर्तमान समय में चिकित्सा सुविधाओं के बढ़ने के बावजूद रोगों की वृद्धि इस बात का संकेत है कि अहिंसा पर आधारित संयमित जीवन-पद्धति न केवल धार्मिक, बल्कि वैज्ञानिक और स्वास्थ्य-सम्मत भी है।

• उपसंहार

जैन दर्शन एक व्यावहारिक, जीवनोपयोगी एवं समन्वित दर्शन है, जो मानव जीवन के लौकिक एवं पारलौकिक—दोनों पक्षों को संतुलित रूप से उन्नत करता है। यह केवल सैद्धान्तिक चिन्तन तक सीमित न रहकर नैतिक आचरण, आत्मसंयम तथा सामाजिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है। अहिंसा के सिद्धान्त के माध्यम से जैन दर्शन व्यक्ति को न केवल आत्मिक शुद्धि एवं मोक्ष की ओर अग्रसर करता है, अपितु समाज एवं विश्व-स्तर पर शांति, सद्भाव और सह-अस्तित्व की स्थापना का भी आधार प्रदान करता है।

हिंसा, क्रोध एवं द्वेष जैसी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति की मानसिक शांति को नष्ट करती हैं और कर्मबन्ध के माध्यम से दुःख का कारण बनती हैं। इसके विपरीत अहिंसा आत्म-रक्षा, आत्म-कल्याण एवं सामाजिक समरसता का सशक्त साधन है। जैन कर्म-सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव अपने कर्मों का स्वयं भोक्ता है; अतः अहिंसक आचरण ही स्थायी सुख और संतुलित जीवन का आधार है।

जैन दर्शन की अहिंसात्मक दृष्टि स्वच्छता, संयम तथा पर्यावरण-संरक्षण तक विस्तृत है। अल्पोपभोग एवं मर्यादित जीवनशैली के माध्यम से यह अपशिष्ट-न्यूनता, स्वच्छ परिवेश तथा पारिस्थितिक संतुलन की दिशा में एक व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करता है। इस प्रकार जैन दर्शन की अहिंसा केवल आध्यात्मिक साधना नहीं, बल्कि समकालीन सामाजिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान की एक प्रभावी एवं सार्वकालिक दृष्टि के रूप में प्रतिष्ठित होती है

सन्दर्भ:

- 1 कुरल काव्य 23/3
- 2 ज्ञानर्णव, आचार्य शुभचंद्र 8/23
- 3 तत्त्वार्थ सूत्र 7/23
- 4 पुरुषार्थसिद्ध्युपाय 44
- 5 रत्नकरण्डश्रावकाचार 53
- 6 वसुनन्दीश्रावकाचार 209
- 7 भगवतीआराधना प्रकाशक चौक विद्या संस्थान 803
- 8 स्वयंभूस्तोत्र 119
- 9 पुरुषार्थसिद्ध्युपाय 45
- 10 दशवैकालिक सूत्र 6/9-10
- 11 आचार्य शिवाकोटी भगवती आराधना गाथा 803
- 12 धम्मपद 19/15